(आत्मा) सच्चिदानन्दस्वरूप है, उसका भान हुआ, इससे पुराना प्रवाह ताजा होकर नया सम्यग्दर्शन-ज्ञान में प्रगट हुआ। तो भगवान को बहुत काल हुआ। इसलिए मानो भगवान हमारे समीप में हों, ऐसा धर्मी को लगता है। यह तो बहुत काल हुआ परन्तु मानो समवसरण में विराजते हों, इस प्रकार से पंचम काल के मुनि ने स्तुति की है। अपना स्वरूप दूर जो दृष्टि में था, राग और विकल्प और निमित्त के भाव में जो दृष्टि अटक गयी थी, उस दृष्टि ने चैतन्य निज घर देखा। निज घर श्रद्धा-ज्ञान में लिया और अपना आत्मा भी समीप है और उसे सर्वज्ञ भगवान त्रिलोकनाथ और दूर काल में हुए, वे भी मानो वर्तमान में समीप में हैं, ऐसे मुनि भक्ति कर रहे हैं। तत्प्रमाण धर्मात्मा को कैसी भक्ति होती है, उसका भी वर्णन साथ में करते हैं।

भगवान को कहा। सातवीं गाथा में कहा न, प्रभु! आप सर्वार्थसिद्धि विमान में थे, वहाँ से आये हैं भगवान ऋषभदेव। वह स्थान भी बताया। कहीं मुक्ति में से आये नहीं है। समझ में आया? जो कुछ अवतार होता है, वह तीर्थंकर हो या कोई भी हो, वे कोई मुक्ति में से आवें, सिद्ध हुई दशा में से जन्में, ऐसा नहीं हो सकता। यह वर्णन समझाने के लिये (कहते हैं कि) प्रभु! आपने पूर्व में पूर्णानन्द आदि की कितनी ही प्राप्ति तो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में की थी, राग बाकी रहा, उसका पुण्य बँधा, (उसके फल में) सर्वार्थसिद्धि में गये। प्रभु! परन्तु आप वहाँ थे, तब उस देव की शोभा थी, हों! सर्वार्थसिद्धि के विमान की (शोभा थी)। नीचे उतरे तो सर्वार्थसिद्धि की शोभा नष्ट हो गयी, ऐसा मैं मानता हूँ। कहो, नेमिदासभाई! क्या होगा यह? मुनि ऐसे अलंकार करते होंगे? वे तो पंच महाव्रतधारी हैं। चन्दुभाई! पंच महाव्रतधारी हैं? अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का विकल्प, उसे व्यवहार पंच महाव्रत का आता है। अन्तर्दृष्टि में उस राग का निषेध और आत्मा की शुद्ध परिणति बहती है। यह कहते हैं कि प्रभु! मैं ऐसी शंका करता हूँ (कि) आप सर्वार्थसिद्धि में थे, तब उसकी शोभा (थी), हों! प्रभु! यहाँ नीचे उतरे न, यह वसुमति पृथ्वी नहीं कहलाती थी! आप जब

माता की गोद में आये, उससे पहले इन्द्रों ने छह महीने तक रत्नों की वर्षा की और माता के गर्भ में सवा नौ महीने रहे। बाहर में रत्न बरसे, अन्तर में आपको चैतन्यरत्न की प्राप्ति है और पूर्व के पुण्य के कारण से बाहर की भी रत्न की वृष्टि हुई। तब से मैं इस पृथ्वी को वसुमति कहना चाहता हूँ। पृथ्वी का नाम लेते हुए भी प्रभु का स्मरण है—ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

पृथ्वी अर्थात् वसुमति। यह तो प्रभु! आपके कारण से है। लोग नहीं कहते? कि भाई! सब शोभा इनके कारण है। इसी प्रकार आत्मा की शोभा ज्ञान और शुद्ध चैतन्य की श्रद्धा, ज्ञान जिसने किया, उसके कारण सब शोभा आत्मा की कहलाती है और शुभराग को भक्ति और व्यवहार भी उसके ही कहने में आते हैं।

अब यहाँ आठवीं गाथा में (कहते हैं)

गाथा ८

अब, भगवान की माता को स्मरण करते हुए कहते हैं—

सच्चियसुरणवियपया मरुएवी पहु ठिऊसि जं गब्भे।
पुरऊ पट्टो बज्झइ मज्झे से पुत्तवंत्तीणं।।८।।

अर्थ – हे प्रभो! हे जिनेन्द्र! आप मरुदेवी माता के गर्भ में स्थित हुए थे, इसलिए मरुदेवी माता, इन्द्राणी तथा देवों से नमस्कार किए गए हैं चरण जिसके – ऐसी हुई; अत: जितनी पुत्रवती स्त्रियाँ थीं, उन सबमें मरुदेवी का ही पद सबसे प्रथम रहा।

भावार्थ – संसार में बहुत सी स्त्रियाँ पुत्रों को जन्म देनेवाली हैं, उनमें मरुदेवी के ही चरणों को क्यों इन्द्राणी तथा देवों ने नमस्कार किया? और उनके चरणों की ही क्यों सेवा की? इसका कारण केवल यही है कि हे प्रभो! मरुदेवी माता के गर्भ में आकर आप विराजमान हुए थे, इसलिए उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई और वे, जितनी पुत्रों को जन्म देनेवाली स्त्रियाँ थीं और हैं, उन सबमें उत्तम समझी गयी, अन्य कोई कारण नहीं।

गाथा - ८ पर प्रवचन

सच्चियसुरणवियपया मरुएवी पहु ठिऊसि जं गब्भे।
पुरऊ पट्टो बज्झइ मज्झे से पुत्तवंत्तीणं।।८।।

हे प्रभु! हे जिनेन्द्र! आप मरुदेवी माता के गर्भ में स्थित हुए थे... वहाँ से आये और यहाँ स्थित (हुए), ऐसा व्यवहार भी अभी निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है, सर्वज्ञ पद प्राप्त होने से पहले। कोई ऐसा कह दे कि सब मुक्ति में से वापिस आते हैं और अवतार धारण करते हैं, वह वस्तु के तत्त्व को समझता नहीं है। जिसने राग और पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर स्वभाव की रुचि की, वह विपरीत रुचि होने नहीं देता। वह स्थिरता पूर्ण करके जिसने अस्थिरता टालकर पूर्ण पद की प्राप्ति होती है, उसके तत्त्व का स्वभाव पुनः अवतार धारण करे, ऐसा नहीं हो सकता। केवलचन्दभाई! लो, यह तो तत्त्व की बात (आती है)। यहाँ तो जैन के नाम से सब कहे, भगवान यहाँ हुए, ज्योति में ज्योति (मिल गयी)।

एक बार कहते थे न! वहाँ (संवत्) १९९५ में थे न? मणियार है न मणियार? राजकोट में नहीं? ...है न? वे १९९५ में आये थे। ज्योति में ज्योति मिलायी। जिस आत्मा की यहाँ से मुक्ति हुई पश्चात् वहाँ ज्योति है, उसमें इकट्ठे मिल गये। तत्त्व की स्थिति क्या है और वास्तविकता उसका क्या स्वभाव है, इसकी खबर नहीं और जैन के वाड़ा में भक्ति की, पूजा की और भगवान सच्चे। किसके सच्चे? अभी तुझे भगवान का क्या स्वरूप? तेरे आत्मा का क्या स्वरूप? उसके भान बिना भगवान किसमें मिले? कहाँ से लाया? भगवान कोई सत्ता में निर्मल होकर परसत्ता में मिल जाए, ऐसा कभी हो नहीं सकता। अनादि आत्मतत्त्व की सत्ता विकाररूप हो या निर्विकाररूप हो, उसकी सत्ता का सर्वस्व परसत्ता से भिन्नपने ही वर्त रहा है। समझ में आया? मुक्ति हो, इसलिए वहाँ सब इकट्ठे (हो जाएँ)।

एक व्यक्ति कहता था, मुक्ति में भी चौका अलग? चन्दुभाई! एक व्यक्ति और वेदान्तिक दृष्टि हो गयी तथा सब पढ़े समयसार और यह सब, हों! समयसार और भक्तामर में वह आता है न विभु। इसलिए सर्व व्यापक जैसी दृष्टि हो गयी। पश्चात् कहे,

मुक्ति में भी सब चौका अलग होंगे ? चौका अर्थात् समझ में आया ? सबकी सत्ता अलग होगी ? यहाँ तो सबकी अलग सत्ता रखकर बैठे हैं। यहाँ तो चूल्हा अलग-अलग करते हैं न ? परन्तु वहाँ चूल्हा अलग ? अरे ! भाई ! यह वस्तु ही कोई अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध सत्स्वरूप है। उसकी भान की दशा न हो तो उस विकार की वृत्ति और रुचि में अटककर चौरासी में भटके। परन्तु वह अपनी सत्ता में है यह सब। इसकी सत्ता पर के कारण नहीं है और इस विकारी सत्ता के अंश में अस्तित्व... वह भी सत् है न ? उसका पर्याय में सत्पना जो विकार का था, उसे आत्मा के स्वभाव के भान द्वारा विकार का सत्पना व्यय हुआ—नाश (हुआ), निर्विकारी सत् का अंश वर्तमान परिणति निर्मल प्रगट हुई, उसे फिर से अवतरित होना या अवतार हो नहीं सकता और वह दूसरी सत्ता में मिल जाए, (ऐसी वस्तुस्थिति नहीं है)। ईश्वरचन्दजी ! कहते हैं न ? एक में अनेक। नहीं आता। सब आता है। सिद्ध की स्तुति। 'एक मांही अनेक राजे।' किस प्रकार अनेक राजे ? अर्थ आता है कुछ ? यह तो जहाँ परमात्मा अपने पूर्णानन्द का, सहजानन्द का आह्लाद स्वतन्त्र स्वभाव के आश्रय से जहाँ अनुभव कर रहे हैं, उस स्थान में दूसरे अनन्त परमात्मा सिद्ध स्वभाव से विराजमान हैं। परन्तु एक सत्ता दूसरी सत्तारूप हो, ऐसा कभी नहीं होता।

इसलिए आचार्य कहते हैं, प्रभु ! आप सर्वार्थसिद्धि में से आये, तब प्रभु ! **आप मरुदेवी माता के गर्भ में स्थित हुए थे।** जब तक राग था और राग के कारण भले तीर्थंकरगोत्र बँधा, परन्तु माता के गर्भ में स्वयं की योग्यता से आये हैं। कर्म के कारण नहीं। समझ में आया ? कर्म तो निमित्तमात्र है। ऐसा नहीं। माता के गर्भ में, उस माता के ही गर्भ में रहने की उनकी योग्यता थी। इन्द्र आकर गर्भ साफ करते हैं। जैसे राजा आते हों, तब आँगन और महल और सब साफ करते हैं या नहीं ? साफ करते हैं या नहीं ? हरिजन से साफ-साफ करो, सब साफ करो। महाराज आनेवाले हैं, अमुक आनेवाले हैं। ऐसे तीन लोक के नाथ आत्मा की शुद्ध पदवी का तो भान हुआ, परन्तु तीर्थंकरपने की प्रकृति के परमाणु बन्धन में (थे), उनकी योग्यता उस प्रकार की थी, उसके कारण जब यहाँ माता के गर्भ में आने से पहले इन्द्रों ने भगवान की माता का गर्भ साफ किया। रत्न की सन्दूक जैसा, उसमें भगवान आकर स्थित हुए। **इसलिए मरुदेवी**

माता के चरण इन्द्राणी और देवों द्वारा नमस्कृत हुए। लो! यह तो माता समकिती है। समझ में आया? उन्हें इन्द्र आकर नमस्कार करते हैं। वजुभाई! किस गुणस्थान में हैं? समकिती है। परन्तु...

मुमुक्षु : भगवान...?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान भी समकिती हैं। यह तो अभी उनकी माता को वन्दन करते हैं, ऐसा मुझे तो यहाँ कहना है।

मरुदेवी माता के चरण इन्द्राणी और देवों द्वारा नमस्कृत हुए। अहो! माता! कहते हैं न कि स्त्री नरक की खान है। नरक की खान वह नहीं। तेरे परिणाम विपरीत तू करे तो तेरा भाव नरक की खान है। स्त्री तो यहाँ कहते हैं कि जिसके गर्भ में तीन लोक के नाथ परमात्मदशा उस भव में, उस देह से, वे परमाणु अन्तिम हैं अब संयोग में, उन परमाणुओं का वियोग होकर, अभाव होकर परमात्मदशा इस भव में प्रगट होगी, ऐसी चरम देह जो तीर्थंकर माता के गर्भ में आये। इन्द्राणी और देव उनके चरण को नमस्कार करते हैं। कहो, समझ में आया? किसका प्रताप है? यह पवित्रता प्रभु की प्रगट हुई है। वह तो निमित्तमात्र है। उनकी माता की भी ऐसी योग्यता है। माता की ऐसी (योग्यता)। दो सीप का मोती, वह पूर्णानन्द जिसे उस भव में होना हो, उनके माता-पिता भी मोक्षगामी ही होते हैं। भले माता एकाध भव करे परन्तु उसे अनन्त भव होवें तो या उस माता का जीव अभव्य हों, ऐसा तीन काल-तीन लोक में नहीं होता। इन भगवान के कारण हो, ऐसा नहीं। ओहोहो! धन्नालालजी! भगवान के गर्भ में आते हैं, तो इस कारण से माता एकावतारी है या नहीं?

मुमुक्षु : अपने-अपने कारण से है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं के कारण से है? यह कहते हैं। यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताकर, उसका आत्मा का ऐसा कोई तैयार हुआ। माता, स्त्री का हो तो उसके गर्भ में तीर्थंकर आये और उनके चरण इन्द्राणियाँ और देव आकर जिन्हें नमस्कृत करते हैं। नमस्कार हो! रत्नकूखधारिणी। रत्न को गर्भ में रखनेवाली माता! आपको हमारा नमस्कार! तीन लोक के नाथ चैतन्यमूर्ति क्षायिक समकित आदि ऋद्धि के धारक, उन्हें

तो हम नमस्कार करते हैं, परन्तु आपके गर्भ में आये, इसलिए आपको भी नमस्कार करते हैं। ऐसी उनकी माता की भी योग्यता है। कहो, समझ में आया? **इसलिए मरुदेवी माता के चरण इन्द्राणी और देवों द्वारा नमस्कृत हुए। और जितनी पुत्रवती स्त्रियाँ थीं, उन सबमें मरुदेवी का स्थान (पद) सबसे प्रथम था।** उनकी उत्कृष्टता बतायी। माता! धन्य है! धन्य माताएँ जगत में हैं। यह श्लोक नीचे लिखा है। भक्तामर में आता है न! बोलो श्लोक। है? इसमें नहीं? इसमें क्या है अधिक?

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रा–
न्नान्या सतुं त्वदुपर्मे जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं
प्राच्येव दिग्जनयति स्कुरदंशुजालम्।।२२।।

यह लिखा कहाँ से? हरिभाई! ऊपर से? उसमें (भक्तामर में) आया, ठीक! क्या कहते हैं? जगत में दिशाएँ तो बहुत हैं। परन्तु सूर्य को जन्म तो पूर्व दिशा देती है।

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रा–
न्नान्या सतुं त्वदुपर्मे जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं

सभी दिशाओं को दिशा कहा जाता है, परन्तु हजार सूर्यकिरण जो खिलती है, वह तो पूर्व दिशा में ही होती है। वह पूर्व दिशा में होती है, दूसरी दिशाओं में नहीं होती। इसी प्रकार हजारों स्त्रियाँ पुत्र को जन्म देती हैं परन्तु माता! तुमने पुत्र को जन्म दिया, वह तू एक ही है। केवलचन्दभाई! यह क्या बात करते हैं?

देखो न! इन्द्र एकावतारी, एक भवतारी। इन्द्र शकेन्द्र है, उसकी इन्द्राणी है (दोनों) एक भव में मोक्ष जानेवाले हैं। निश्चय से सर्वज्ञ ने कहा है। पति-पत्नी दोनों। इन्द्राणी तो आयी तब तो मिथ्यात्व लेकर आयी थी क्योंकि स्त्रियों में समकिती उत्पन्न नहीं होता और शकेन्द्र जो स्वयं है, वह तो आत्मभान लेकर अवतरित हुआ था और स्त्री की देह धारण हो, तो मिथ्यात्व हो तो ही होता है, तथापि उस इन्द्राणी की ऐसी योग्यता होती है कि भगवान आदि के निकट जाकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करती है और उसे एक ही

भव इस देह का और अन्तिम मनुष्य का (होता है)। दोनों एक भवतारी होकर मोक्षगामी होते हैं। समझ में आया? यह देखो, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से माता और पिता भी ऐसे होते हैं। वे भगवान के कारण से नहीं। क्या होगा इसमें? नेमिदासभाई! भगवान के कारण से... आयी या नहीं?

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। इसमें दूसरा लिखा है।

कहते हैं कि वह माता भी ऐसी आत्मा की जाति वाली होती है कि जिसे अल्प भव में पूर्ण मुक्ति, परमानन्द की सिद्ध समान उसकी दशा होनेवाली हो और पिता की भी सिद्ध की दशा होनेवाली हो। ऐसे ही माता-पिता के शीप में वह तीर्थंकर का जीव मोतीरूप पकता है। अन्यत्र वह हो नहीं सकता। ऐसा ही कोई सहज निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बना रहता है। लोगों को इसमें से (ऐसा लगता है कि) इससे यह हुआ, इससे यह हुआ, यह बात अन्दर से हटती नहीं। देखो न! हाथ-पैर सब हैं। यह हाथ-पैर यहाँ हैं और दूसरे को नहीं। वह नहीं उसे इच्छा होती है कि इसको ऐसा करूँ। परन्तु कुछ है नहीं, इसलिए होता नहीं। और यहाँ इच्छा होती है, इसलिए हाथ-पैर आदि हिलते हैं, ऐसा है नहीं। यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की व्याख्या में ऐसा कहा जाता है कि इन भगवान के कारण से माता-पिता (हुए)। ऐसे अमृतचन्द्राचार्य के कारण से ऐसी टीका हुई और कुन्दकुन्दाचार्य के कारण से ऐसे शास्त्र लिखे गये।

अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, भाई! इस जगत के जो पदार्थ हैं आत्मा, परमाणु, छहों द्रव्य, वे ज्ञेय होने के योग्य हैं। परन्तु यह भाषा उसे ज्ञेयरूप से समझ दे, ऐसी भाषा में ताकत नहीं है। और हम यह व्याख्या करनेवाले हैं, छह द्रव्य जगत की चीज़ें, वे प्रमेय होने के योग्य हैं, उसके कारण से परिणम रहे हैं। भाषा के पुद्गल भाषा के कारण से हो रहे हैं और हम व्याख्या और हम व्याख्याता, कहनेवाले, भाषा व्याख्या और जगत के पदार्थ व्याख्येय करनेयोग्य, ऐसा मानना नहीं। भाई! प्रवचनसार में अन्तिम श्लोक में कहा है न? अन्तिम। नहीं मानना, हों! हम तो आत्मा हैं। यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पहिचानना अलग बात है परन्तु निमित्त सम्बन्ध में चढ़ नहीं बैठना कि हमने टीका की।

वापस उसकी टीका की, लो, यह लिखा। देखो! उसके निमित्त से लिखा गया, उसका उपकार मानना चाहिए। उसमें लिखा है। समयसार में पीछे पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है। आये। बात वहाँ हुई वहाँ आये वापस कमरे में। लो, इसमें तो ऐसा कहा है। क्या कहा है इसमें? पहला सुना नहीं? शब्दों की रचना की परिणमन व्याख्या, वह भाषा की पर्याय है। व्याख्येय पदार्थ, वे उसके काल में ज्ञेयरूप से परिणम रहे हैं। मैं उनका व्याख्याता हूँ, यह तीन काल में मानना नहीं। ओहोहो! चन्दुभाई!

वहाँ तो ऐसा कहा है कि हे जनो! मोह में न नाचो। ऐसा मोह मिथ्याभ्रम करके और हम व्याख्या करनेवाले हैं और व्याख्या भाषा की तथा ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ भाषा द्वारा (ज्ञात हुए)। नहीं; वे तो ज्ञान में अपने ज्ञान के कारण से ज्ञेय भासित होते हैं। भाषा के कारण से, पर के कारण से और भाषा का परिणमन स्वतन्त्र होता है तो उसके कर्ता-हर्ता हम नहीं हैं। धन्नालालजी! क्या है? व्यवहार का लोप हो जाता है। इसका नाम ही व्यवहार यथार्थ ज्ञान में आता है। है? सर्वज्ञ की वाणी, वह तो विकल्प है नहीं। वाणी के कर्ता भगवान है ही नहीं और भगवान ने दुनिया को वाणी द्वारा समझाया और वाणी द्वारा दूसरे जगत को-ज्ञेय को समझे, यह वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। यह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से कथन है।

यहाँ भी यह कहते हैं। हे भगवान! आप माता के गर्भ में आये। माता पूजनीक हो गयी। देव और इन्द्राणियों ने उनकी पूजा की और जितन पुत्रवती स्त्रियाँ थी, उन सबमें मरुदेवी उत्कृष्ट समझी गयी। एक पूर्व दिशा को शोभा प्राप्त हुई। उसने सूर्य को जन्म दिया। दिशाएँ तो दसों हैं ऊर्ध्व, अधो,... पश्चिम आदि। उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा परन्तु उस पूर्व में ही उस दिशा की शोभा है। इसी प्रकार बहुत सी स्त्रियाँ पुत्र को जन्म देती है। माता! तूने जो तीर्थंकर को जन्म दिया, इससे तेरी शोभा उसके कारण है। यह निमित्त के कथन हैं। वे शोभा इतनी लेकर आये हैं। नेमीचन्दजी! समझ में आया? यह समझने की बात है। कोई कहता है कि दिल्ली में बहुत गड़बड़ है। बहुत गड़बड़ है। क्या करें? समझे स्वयं से, दूसरा क्या करे? किसी की गड़बड़ी कोई निकाल नहीं सकता।

यहाँ कहते हैं, उस पूर्व दिशा की शोभा सूर्य के कारण है। इसी प्रकार हे नाथ! हे देवी! माता! आपकी शोभा यह प्रभु आये और पधारे न, इनसे है। ओहो! यह तो

निमित्त-नैमित्तिक की (बात है)। प्रभु के कारण से उनकी शोभा और यह शोभा यहाँ है, इसलिए भगवान को आना पड़ा। ऐसा होगा या नहीं? चन्दुभाई! इनकी-माता की शोभा होनेवाली होगी, इसलिए भगवान को आना पड़ा। वजुभाई! क्या कहा? यह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से भक्ति में शुभराग आया है न। उसमें भगवान निमित्त है। नैमिर्त्तिक अपनी हुई विकारी शुभराग की पर्याय है। अन्तरस्वभाव में समीपता बरतने पर भी भगवान की भक्ति करता है, हे नाथ! बहुत जन्मते हैं, हों! ऐसा भी दुनिया में नहीं कहते?

जननी जन तो भक्त जण अरु या दाता या शूर
नहीं तो रहना बांझ किन्तु मत गंवाना नूर॥

कहा जाता है न? उसमें आता है, यह सब बोलते हैं। जननी जणे कौन? यह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से कथन है। हे माता! जननी जण तो भक्त जण। आत्मा के स्वभाव की भक्ति करनेवाले ऐसे आत्मा को जन्म देना और या दाता। दाता... दाता... दाता... उदाररूप से दूसरों को जगत को दानादि दे और अपने स्वभाव का अपने को दान दे या दाता अथवा शूर। शूरवीर, वीर को जन्म देना नहीं तो बाँझ रहना। इस शरीर का नूर गँवाना नहीं। ईश्वरचन्दजी! वहाँ किसी के कारण किसी का नूर घटता होगा? और किसी के कारण पृथ्वी के लिये उसके कारण उसकी शोभा होगी? भक्तजन, भगवान जहाँ जन्मे, उस माता को भी धन्य कहते हैं।

संसार में बहुत सी स्त्रियाँ पुत्रों को जन्म देनेवाली हैं। उसमें से मरुदेवी के चरणों में इन्द्राणी तथा देवों ने क्यों नमस्कार किया? और उनके ही चरणों की क्यों सेवा की? इसका कारण केवल यह ही है कि हे प्रभु! मरुदेवी माता के गर्भ में आकर आप विराजमान हुए थे, इसलिए उनकी इतनी प्रतिष्ठा हुई और पुत्र को जन्म देनेवाली जितनी स्त्रियाँ थीं और हैं, उन सबमें उन्हें उत्तम समझा गया। धन्य माता! यह उस धर्म की धन्य के कारण यह तो सब (बातें की हैं)। धन्य... धन्य माता! आहाहा! जगत में पुत्र को जन्म दे, परन्तु तुमने जिस पुत्र को जन्म दिया, इस कारण से तुम्हें भी हम नमस्कार करते हैं।

नौवीं

गाथा ९

अब, भगवान के जन्माभिषेक की बात करते हैं–

अंकत्थे तइ दिट्ठे जंतेण सुरालयं सुरिदेण।
अणिमेसत्तबहुत्तं सयलं णयणाण पडिवण्णं।।९।।

अर्थ – हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! जिस समय इन्द्र आपको लेकर मेरुपर्वत को चला था, तब आपको गोद में बैठे हुए उसने देखा; उस समय उसके नेत्रों का निमेष (पलक) से रहितपना तथा बहुतपना सफल हुआ।

भावार्थ – हे प्रभो! इन्द्र के नेत्रों की अनिमेषता और अधिकता आपको देखने से ही सफल हुई थी। यदि इन्द्र आपके स्वरूप को न देखता तो उसके नेत्रों का पलकरहितपना और हजार नेत्रों का धारण करना सर्वथा निष्फल ही समझा जाता।

तात्पर्य यह है कि आपके समान रूपवान संसार में दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं था।

गाथा - ९ पर प्रवचन

अंकत्थे तइ दिट्ठे जंतेण सुरालयं सुरिदेण।
अणिमेसत्तबहुत्तं सयलं णयणाण पडिवण्णं।।९।।

भगवान के दर्शन से इन्द्र के हजार नेत्र सफल हुए। देखो! अब नेत्र आये। समझ में आया? वहाँ कहा था, पश्चात् यहाँ मरुदेवी आये, पश्चात् आये अब नेत्र। आहाहा! जन्म के बाद। प्रभु ऐसे जन्मे, वहाँ से उठाकर रखी है बात, ठेठ से। सर्वार्थसिद्धि में से लेकर आये हैं। प्रभु! आप जब जन्मे और इन्द्रों ने ऐसे हाथ में लिये। इन्द्राणी लेकर ऐसे देती है। और ऐसे हजार नेत्र से आपको देखा। प्रभु! उसके नेत्र सफल। उसने हजार नेत्र सफल किये।

हे जिनेन्द्र! जिस समय इन्द्र आपको लेकर मेरुपर्वत को चला था, तब

आपको गोद में बैठे हुए उसने देखा; उस समय उसके नेत्रों का निमेष (पलक) से रहितपना... ऐसे चमके न! उसकी आँख... कहते हैं न? समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! टनकाररहितपना अर्थात् देवों के नेत्र मुँदते नहीं। ऐसे (देखते हैं)। परन्तु प्रभु! उनके नेत्र मुँदते नहीं इसकी सफलता कब हुई? आपके रूप को जब ऐसे देखा... ओहोहो! तब उनके नेत्र की सफलता। समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा के ज्ञानरूपी नेत्र को हे नाथ! यह आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध है, यह नजर में पड़ने से आत्मा नजर में निधान देखा और प्रतीति में आया, तब उसके ज्ञाननेत्र सफल हुए। यह... नेत्र तब सफल कहलाते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ऐसा है जरा। चन्दुभाई! कहो, समझ में आया?

यह निश्चय भक्तिसहित की व्यवहार भक्ति का वर्णन करते हैं। नेत्र, यह आँख क्या? इन्द्रियाँ क्या? खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, यह ज्ञान की विकास शक्ति जो नेत्र के स्थान में गिनने में आती है, उसकी सफलता कब गिनी जाती है? उस ज्ञान की दशा द्वारा भगवान चैतन्य जो निर्मल निधान परमात्मस्वरूप है, उसकी नजर में पड़ने से श्रद्धा-ज्ञान होने पर उस ज्ञान के नेत्र की सफलता कही जाती है। नहीं तो पढ़े-गुने की कुछ सफलता नहीं है। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? नरभेरामभाई! वकालत-वकालत का कुछ नहीं मिलता, कहते हैं। धूल-धाणी। लड़के के लिये मजदूरी कर-करके मर जाता है।

मुमुक्षु : लड़के के लिये कौन करता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करता। अपने लिये... करता है। यहाँ आया था न वह तुम्हारा? नटु को बहुत कहा था, हों!

आपको गोद में बैठे हुए उसने देखा; प्रभु उसके नेत्र सफल हैं। उसका शुभभाव भक्ति का उछला, वह व्यवहार से सफल और अन्तर में ज्ञान की पर्याय के नेत्र द्वारा चैतन्य प्रकाश पुंज ज्ञायक समस्वभावी चैतन्यसूर्य है, ऐसे सूर्य को आत्मा की ज्ञान की पर्याय ने जानते हुए वह ज्ञान थोड़ा हो तो भी सफल है। नौ पूर्व और ग्यारह अंग का

ज्ञान न हो, परन्तु अल्प ज्ञान भी यदि अपने स्वभाव को यदि जाने, माने और पहिचाने तो वह अल्प ज्ञान भी हजार नेत्र की तरह सफल है। इसके अतिरिक्त ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़े तो भी सफल नहीं है। यों देवों को वह नहीं होता? समझे न? पलक-पलक। पलक नहीं झपकती परन्तु कहते हैं, पलक नहीं झपकने की कीमत नहीं है। पलक नहीं झपकने की कीमत तो आपको देखा, उससे हुई है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

जहाँ-जहाँ भगवान सर्वज्ञ परमात्मा अथवा सर्वज्ञ ज्ञ-स्वभावी आत्मा को देखना-जानना और मानना, उसकी ही इस जगत में शोभा है। इस दुकान को बहुत देखे और देखे और इस मकान को और... इन्द्र वहाँ कहाँ थे? परन्तु इन्द्रियों का उसमें उपयोग करे, वकालात में, कोर्ट में अमुक, वह सब सफलपना कहलाता है या नहीं?

मुमुक्षु : काम तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या आता है?

मुमुक्षु : भव के लिये सफलपना।

पूज्य गुरुदेवश्री : भव के लिये सफल, यह तो कहा है प्रवचनसार में। तेरी क्रिया सफल, बापू! किस प्रकार? कि जो कोई दुनिया के इन्द्रियज्ञान में और इन्द्रिय की ओर के झुकाव में जो तुझे पुण्य और पाप, दया, दान, विकल्प आदि उठा, (वह) तेरा सफल है, भाई! अर्थात्? अर्थात् अनादि काल से भव का फलपना जो पकता आ रहा है, वही भव तुझे पकेगा। चन्दुभाई! प्रवचनसार में कहा है। सफल-सफल है तेरा और धर्मात्मा की क्रिया अफल है। क्योंकि धर्मात्मा अपने ज्ञाननेत्र और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र द्वारा आत्मा में श्रद्धा-ज्ञान को स्थिर (करता) है। (इसलिए) उसका अफल है। अनादि का भवफल फलता है, वह फलेगा नहीं। यह भव नहीं फलेगा। उसे परमात्मपद फलेगा। वह फला नहीं कहलाता। भव फले, उसे सफल कहा जाता है। अनादि का फला, वह फला कहलाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

हे प्रभो! इन्द्र के नेत्रों की अनिमेषता और अधिकता... यह बहुत आँख है न? **आपको देखने से ही सफल हुई थी। यदि इन्द्र आपके स्वरूप को न देखता तो उसके नेत्रों का पलकरहितपना और हजार नेत्रों का धारण करना सर्वथा निष्फल ही**

समझा जाता। निष्फल ही गिना जाता है। आहाहा! भगवान! आपके दर्शन हुए न, सफल (हुए)। ...जिनवर परमात्मा देखे, तब कहलाते हैं कि इसे ज्ञाता-दृष्टा की दृष्टि होकर देखे, तब इसने भगवान को देखा कहलाता है। ओहो! समझ में आया? यह भक्ति भी कैसी हो, उसका यहाँ वर्णन चलता है। सवेरे तो निश्चय की वस्तु, दृष्टि का विषय, शक्ति का सामर्थ्य वर्णन, उसके साथ यहाँ भक्तिवाले का शुभराग कैसा होता है, उसका वर्णन किया है। निश्चय तो साथ में पड़ा ही है। यदि निश्चयदृष्टि और यथार्थ भान न हो तो ऐसी भक्ति को गिनने में नहीं आता। उसे व्यवहार भी कहने में नहीं आता। कहो, समझ में आया?

तात्पर्य यह है कि हे जिनेन्द्र! आपके समान रूपवान संसार में दूसरा कोई भी मनुष्य नहीं था। ओहो! उनके पुण्य का क्या कहना? अनन्त काल में जो आत्मा की शुद्ध सत्ता और शुद्ध चैतन्यमूर्ति के भान बिना के जो पुण्य बँधे, वह कोई अपूर्व नहीं था। यह तो पुण्य भी अपूर्व। समझ में आया? श्रीमद् में एक पत्र में आता है। पूर्व में ऐसा देह न धरा हो तो अब फिर दूसरा अपूर्व देह धरूँगा। अपूर्व अर्थात् इस परमाणु की जाति ही दूसरी आयेगी। ओहो! क्योंकि अनन्त काल में जो चैतन्य के प्रकाश की सत् की प्रतीति बिना के पुण्य के परमाणु बँधे हुए, उनके निमित्तरूप जिन परमाणुओं का संयोग देह का आवे और चैतन्य के स्वभाव की भूमिका में जो पुण्य के परिणाम हों और उसमें जो परमाणु आवे, वह जाति ही दूसरी होती है। ओहो! समझ में आया? यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! कुँवरजीभाई! जरा दोपहर को तो समझ में आये, (ऐसा है)। सूक्ष्म सवेरे (आता है), परन्तु मेहनत करना नहीं और सिरपच्ची करना है। घानी के बैल की भाँति सवेरे से शाम तक चल-चलकर चला। जहाँ पट्टी खोली, वहाँ वह घानी और वह घाँची। इसी प्रकार जिन्दगी में... किसी ने लिखा है न? कमाना नहीं और... कहाँ आया था शब्द? कहीं शब्द आया था। ...कमाना। ऐसा कुछ आया था। वाड़ीभाई के पत्र में कहीं आया था। ये तुम वास्तविक कमाते हो। नहीं? ऐसा कुछ आया था। शान्तिभाई पढ़ते हैं। शान्तिभाई हैं या नहीं? ऐई! शान्तिभाई! भटकता गया, देखो! अवसर नहीं होता यह। वजुभाई तो उन्हें बहुत कहे। अवसर नहीं होता। क्या आज कुछ कहते थे न वजुभाई, नहीं?

मुमुक्षु : सब स्वार्थ तो सुनने का करते हैं, निःस्वार्थ...

पूज्य गुरुदेवश्री : वजुभाई... महाराज यह सब पढ़ेंगे। हम सुनेंगे। परन्तु सुनने में भी तुम कहाँ फुरसत से बैठते हो। तुम्हें तो इतनी फुरसत नहीं। जगत के प्राणी को सत् सुनने की निवृत्ति नहीं। सत्य वस्तु कौन है, सत्य धारा चैतन्य समझने की या समझाने की क्या है? यह समय नहीं मिलता, वह समय घाणी के घाँची जैसा मिलता है। पूरे दिन और रात कमाना... कमाना... कमाना... और कमाना। कमाना। एक पाई की कमायी नहीं होती उसमें और निवृत्त (होता नहीं)। प्रभु! जरा निवृत्त तो हो... निवृत्त तो हो...

वहाँ तो कहते हैं कि इस ज्ञान को प्राप्त करने की सफलता (तब कहलाये कि) आत्मा की अन्दर की दृष्टि हो और भगवान को देखे तथा व्यवहार में भगवान को देखे तो उसका सफलपना है। दूसरे प्रकार से सफलपना नहीं है। आत्मा समान रूपवान नहीं है। अर्थात्? पुण्य का रूपपना भी दूसरे प्रकार का होता है। इस जीव को शरीर, रूप, कीर्ति अनन्त काल में नहीं मिली, ऐसे शुभपरिणाम सत्ता की भूमिका के भान की सत्ता में हुए, ऐसे परिणाम की जाति भी पूर्व में नहीं हुई थी और उनके बन्धरूप परमाणु बँधे, ऐसे भी कभी नहीं थे और फलरूप परमाणु आवे, ऐसे भी संयोगरूप कभी नहीं आये। समझ में आया इसमें? ईश्वरचन्दजी!

इसमें भी कहा है भगवान को। प्रभु! यह जितने शान्तरस के परमाणु जगत में थे, वे आपके शरीर में आये। अब एक भी बाकी रहा नहीं। आपकी शान्ति उपशमरस अविकारी स्वभाव आपको पूर्ण प्रगट हुआ। उसके जो यह डिब्बी-शरीर। बड़ा हीरा पाँच करोड़ का हो, उसे रखने का स्थान अर्थात् डिब्बी भी अलग प्रकार की होती है। उसी प्रकार भगवान चैतन्यरत्न जिसमें-देह में सर्वज्ञ पद को प्राप्त करनेवाले हैं और वे भी वापस तीर्थंकर... समझ में आया? उस शरीर की डिब्बी भी अलग प्रकार की। उसका रूप इन्द्र हजार आँख से देखे तो तृप्ति न हो। इसी प्रकार प्रभु! तेरा चैतन्यरूप इस ज्ञान से बारम्बार देखे तो भी तृप्ति होगी नहीं। स्थिर... स्थिर... स्थिर होकर पूर्ण कब प्राप्त करूँ? पूर्ण कब प्राप्त करूँ? ऐसे चैतन्यनिधान, उसे श्रद्धा-ज्ञान से देख तो तेरे चैतन्य के चमत्कार की अनन्तता का पार नहीं आयेगा, तथापि श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता में वह आ जाता है। कहो, समझ में आया?

गोद में यह बात क्या करते हैं ? यहाँ से ले जाते हुए गोद की बात है, हों ! भगवान को जब यहाँ से ले जाते हैं न, तब इन्द्र की गोद में बैठाते हैं और जब पाण्डुकशिला पर पधराते हैं, तब तो भगवान को ऐसे सीधे बैठाते हैं। पाण्डुकशिला पर सीधा बैठाते हैं। शिला पर बैठाते हैं, वहाँ भी लिखा है... शकेन्द्र गोद में बैठाते हैं। वह कोई सिद्ध भगवान और मानों यहाँ... सिद्ध को शरीर तो न हो परन्तु यह उनका शरीर ही कोई अलग प्रकार का।

सर्वोत्कृष्ट परमाणु की पर्याय सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकरगोत्र का भाव हुआ, उस पुण्य का क्या कहना ! अचिन्त्य जिसका पुण्य है। प्रभु ! आपके रूप को देखा, तब इन्द्र के नेत्र सफल हुए। नहीं तो उसके नेत्र सफल नहीं होते। इसलिए दोनों प्रकार से उसकी... है। कहो, नरभेरामभाई ! समझ में आया इसमें ? ऐसे लड़के को देखे, ऐसा नहीं। यह लड़का अच्छा है और यह है और यह... ओहोहो ! ...पका है न। अब पका। धूल पकी है वहाँ। ऐई ! प्रेमचन्दभाई !

दसवीं।

गाथा १०

अब, मेरुपर्वत पर भगवान का जन्माभिषेक हुआ, उसका अलंकार करके स्तुतिकार कहते हैं कि–

तित्थत्तणमावण्णो मेरु तुह जम्मण्हाणजलजोए।
तत्तस्स सूरपमुहा पयाहिणं जिण कुणंति सया।।१०।।

अर्थ – हे प्रभो ! हे जिनेन्द्र ! जिस समय आपको जन्म–स्नान मेरु के ऊपर हुआ था, उस समय उस स्नान के जल के सम्बन्ध से मेरु तीर्थपने को प्राप्त हुआ था, अर्थात् तीर्थ बना था; इसीलिए हे जिनेन्द्र ! उस मेरुपर्वत की सूर्य, चन्द्रमा आदि सदा प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

भावार्थ – आचार्य उत्प्रेक्षा करते हैं कि हे प्रभो ! जब तक मेरुपर्वत के ऊपर

आपका जन्म-स्नान नहीं हुआ था, तब तक वह मेरुपर्वत, सामान्य पर्वतों के समान था और तीर्थ भी नहीं था, किन्तु जिस समय से आपका जन्म-स्नान, मेरु के ऊपर हुआ है; उस समय से उस आपके जन्म-स्नान के जल के सम्बन्ध से मेरुपर्वत तीर्थ, अर्थात् पवित्र स्थान हो गया है।

यह बात संसार में प्रत्यक्ष गोचर है कि जो वस्तु पवित्र हुआ करती है, उसकी लोग भक्ति तथा परिक्रमा आदि करते हैं; इसीलिए उस मेरु को पवित्र मानकर सूर्य, चन्द्रमा आदि रात-दिन उस मेरु की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करते रहते हैं-ऐसा मालूम होता है।

गाथा - १० पर प्रवचन

तित्थत्तणमावण्णो मेरु तुह जम्मण्हाणजलजोए।
तत्तस्स सूरपमुहा पयाहिणं जिण कुणंति सया।।१०।।

सर्वार्थसिद्धि में पहले लिये नजर में। फिर मरुदेवी माता, नाभिराजा के घर में जन्मे, इसलिए पृथ्वी को वसुमति कहा, पश्चात् माता को धन्य कहा, और पश्चात् नेत्र को धन्य कहा। अब भगवान को मेरुपर्वत पर ले जाते हैं, उसे लक्ष्यकर भक्ति करते हैं। ओहोहो! क्या परन्तु आचार्य! जंगल में रहकर निर्लेपदशा श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की प्रगट हुई है, तथापि विकल्प आया है न (तो) ऐसे भक्ति के सूत्र ताड़पत्रों पर लिख गये हैं। हम उनके कर्ता नहीं और हम उनके भोक्ता नहीं। उसका फल हमको न हो। हमारा तो हमारे पास है। उनका फल हमें वेदन में ज्ञान-दर्शन और चारित्र के कर्ता के काल में ही उसका वेदन हमको भोक्तापने है। उसके फल को भविष्य में भोगेंगे, ऐसा है नहीं।

हे प्रभो! हे जिनेश्वर! जिस समय आपका जन्म-स्नान मेरु के ऊपर हुआ था,... जन्म अभिषेक। हजारों घड़े भगवान को ऐसे... इन्द्र, हों! एकावतारी ऐसे। बराबर ऐसे कमर बाँधकर खड़े हों। फट-फट ऐसे रोम-रोम में उसे भक्ति उछली है भगवान के के प्रति। आत्मा में भी आनन्द का प्रहलाद श्रद्धा और ज्ञान होने पर प्रदेश-प्रदेश में आत्मा को प्रहलाद हो जाता है। इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म कहने में

आता है। आहाहा! समझ में आया? असंख्यप्रदेशी धाम प्रभु में एकाग्र होने पर अन्तर की शक्ति की व्यक्तता से असंख्य प्रदेश पर्याय में व्यापक आनन्द को पाते हैं। प्रसादपने, अह्लादपने को पाते हैं, उसमें कोई प्रदेश बाकी नहीं रहता। ऐसा भगवान आत्मा ने अपने में एकाग्र होकर अपना जन्माभिषेक किया। जन्म अर्थात् सम्यग्दर्शन, चारित्र को जन्म दिया, वह अवतार सफल है।

यहाँ कहते हैं कि **जब आपका जन्माभिषेक हुआ, उस समय उस स्नान के जल के सम्बन्ध से मेरु तीर्थपने को प्राप्त हुआ था,...** क्या कहा? भगवान! वह मेरु तीर्थ हो गया। धर्मात्मा सर्वज्ञ आदि, मुनि आदि जहाँ विराजमान हों, उस क्षेत्र को तीर्थ कहते हैं। निमित्तरूप से तीर्थ कहते हैं। तीर्थ तो तिरने का उपाय अन्दर प्रगट हुआ, इसलिए स्वयं तीर्थ है। भगवान तो उसके निमित्तरूप से कहनेवाले हैं। परन्तु जिस क्षेत्र में धर्मात्मा विराजते हैं, उस क्षेत्र को भी तीर्थ कहा जाता है। ओहो! भगवान! आपको मेरुपर्वत पर ले गये। परन्तु वह तो चौथे गुणस्थान में थे, छठवें गुणस्थान में नहीं थे। वहाँ मेरुपर्वत तीर्थपने को प्राप्त हुआ? समझ में आया? मुनि होंगे, तब मेरुपर्वत में ले जाए। परन्तु कहते हैं कि यह चैतन्यरत्न की भान की दशा प्रगट हुई और यह पूर्व के महापुण्य के कारण यह दशा शरीर की (हुई), ऐसे शरीर के कारण इन्द्र जब मेरुपर्वत पर ले गये, वहाँ जो जन्माभिषेक हुआ, तब मेरु को तीर्थपना प्राप्त हुआ।

इसीलिए सूर्य, चन्द्रमा आदि... समझ में आया? **आदि मेरुपर्वत की सदा प्रदक्षिणा करते रहते हैं।** लो, ऐसे चक्कर लगाते हैं। क्या कहते हैं? उनके लक्ष्य में जहाँ भगवान विराजे न, इसलिए यह मेरुपर्वत तीर्थरूप हो गया, इसलिए यह सूर्य-चन्द्र है न, वे घूमा ही करते हैं। प्रकृति के जो चन्द्र, सूर्य ज्योतिषी मेरु को चक्कर लगाते हैं, यह तो अनादि की पद्धति है। यह कहीं नयी नहीं है परन्तु प्रभु! जब आपको वहाँ ले गये न, इसलिए उस मेरुपर्वत को तीर्थपने की उपमा दी। उसके कारण ज्योतिषी वहाँ (चक्कर लगाते हैं)। तीर्थ को प्रदक्षिणा करते हैं या नहीं? इस भगवान को प्रदक्षिणा दे अन्दर में। यह सब व्यवहार है, हों! व्यवहार है। प्रसन्न-प्रसन्न (होकर) देखे। वह विवाह हो तब लड़के को नहीं कहते? यह गाते नहीं तुम्हारे शोभायात्रा में चढ़े तब? अमुक विवाह करे, उसका दादा ऐसे देखे और उसका भाई ऐसे देखे। क्या कुछ कहते

हैं या नहीं ? ऐई ! कुँवरजीभाई ! उसकी ओर देखे और उसकी ओर देखे। ऐसा कुछ गाते हैं। ऐई ! चन्दुभाई ! भाई का काका...

मुमुक्षु : उसे सब खबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसने तो सब... की है न। इसे खबर नहीं। अभी नटु का विवाह हुआ है। वह गाये, महिलाएँ गाये, फुरसत होवे न तो गाये सवेरे उठकर। भाई का काका इसकी ओर देखे और उसकी ओर देखे। उसको मलावे आहाहा ! धूल में भी देखने आवे। वहाँ क्या मुर्दा चमड़ी का... है वह।

भगवान त्रिलोकनाथ चैतन्यमूर्ति जहाँ आगे आया और जहाँ जन्माभिषेक हुआ, वहाँ कहते हैं कि देव चारों ओर प्रदक्षिणा देते हैं। ओहोहो ! भगवान यहाँ बैठे थे, भगवान यहाँ बैठे थे। दूसरे में नहीं आता ? कि अमुक सहजानन्द महाराज यहाँ बैठे थे, यहाँ खाते थे, यहाँ धोते थे, इस घोड़ी पर चढ़े थे, उनके सिर पर पगड़ी। आता है या नहीं ? केवलचन्दभाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। पगड़ी है न। अमुक ऐसा और अमुक ऐसा।

यह तो एक चीज़ क्या है ? वह समझने जैसी है परन्तु उसे स्मरण करने के सब निमित्त हैं। जिनके स्मरण में भगवान ही वर्तते हैं और चैतन्यस्वभाव ही जिसकी दृष्टि के समीप में वर्तते हैं, उसे तो मेरुपर्वत (पर) भगवान विराजते हैं, इसलिए यह भी भगवान के कारण से तीर्थपने को प्राप्त हुआ। नहीं तो वह पत्थर है, वह तीर्थपने को प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार ऐसा कहकर भगवान की ही महिमा गायी है। कहो, समझ में आया ? प्रदक्षिणा करते हैं। **आचार्य उत्प्रेक्षा अलंकार करके कहते हैं...** है सत्य बोलनेवाले परन्तु महिमा करते हैं तब... इसलिए दुनिया में नहीं कहते ? यह विवाह करे तब ऐसा कहते हैं या नहीं ? मोती... क्या कहते हैं ? थाल भर्यो रे सग मोतिये। हराम एक मोती होवे घर में। परन्तु यह वाघरी और कोली यदि विवाह करे न तो यह गाते हैं। थाल भर्यो रे सग मोतिये रे। ऐसा गाते हैं न ? ऐसा बखान करते हैं। वे लेने जाए न क्या कहलाता है ? बर्तन। कुम्हार के यहाँ।

मुमुक्षु : चाक पूजने।

पूज्य गुरुदेवश्री : चाक। परन्तु ऐसा गाये परन्तु वह मिथ्या बोल क्या बोलते हो, इसकी उसे खबर नहीं। उस पुत्र के प्रेम के समक्ष दूसरा सूझता नहीं।

इसी प्रकार जिसे भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप की जिसे श्रद्धा-ज्ञान हुए हैं और ऐसे पूर्ण पद को पानेवाला जिसे अन्तिम शरीर मिला, ऐसे भगवान के गीत वह सर्वोत्कृष्टरूप से गाता है। वह थाल भरा सच्चा उसका कहते हैं। सवेरे उगा क्या कुछ कहते हैं न? यह सूर्य। स्वर्ण सम सूर्य उगा। अब सूरज तो है वह है। परन्तु अपने प्रीति के पुत्र के आह्लाद में अन्तिम हो, पहला हो, बापू! साठ वर्ष में यह अन्तिम पुत्र है। विवाह में जो हो वह, अति उमंग / उत्साह यह है। उसकी माँ गाठिया खाया हो, दाल खायी फिर कण्ठ बैठ जाए। दूसरे कहें, परन्तु अब थोड़ा बोलो न! किन्तु बोले बिना चलता है कुछ? उस कण्ठ में फेरफार होवे तो भी शोर मचाया करती है। घूमा करती है मण्डप के नीचे और जहाँ उसके लड़के... समझ में आया? उसके मेहमान उतरे हों, घूमा-घूम करे चारों ओर ऐसे... ऐसे... हर्ष समाये नहीं। धूल में भी हर्ष नहीं है। पाप का है।

यहाँ सर्वज्ञ परमात्मा को देखकर अथवा सर्वज्ञ जिस देह में होनेवाले हैं, ऐसे भगवान को देखकर प्रभु! यह आपकी प्रदक्षिणा देव करते हैं, हों! वह तीर्थपने को आपके कारण प्राप्त हुआ, कहते हैं। समझ में आया? **जब तक मेरुपर्वत के ऊपर आपका जन्म-स्नान नहीं हुआ था, तब तक वह मेरुपर्वत, सामान्य पर्वतों के समान था...** यह नया नहीं, हों! है तो अनादि का परन्तु उसे ऐसे नयी आदि (शुरुआत) हुई है न स्वयं को। धर्म की आदि होकर प्रदक्षिणा देने लगा अब आत्मा पर। बारम्बार आत्मा, बारम्बार चैतन्यमूर्ति निधान मैं शुद्ध हूँ। ऐसी श्रद्धा और ज्ञान में आश्रय वह है, इसलिए कहते हैं कि प्रभु! यह मेरुपर्वत तो सामान्य पर्वत में गिना जाता था, हों! आप नहीं थे तब। परन्तु यह तो अनादि के भगवान (होते हैं)। पहले होंगे या नहीं कभी भगवान? नेमिदासभाई! पहले भगवान थे? पहले कभी हों नहीं। अनादि के हैं। यह तो इस चौबीसी की अपेक्षा से आदिश्वर भगवान को पहले गिनकर उनकी स्तुति में स्वयं अनादि साधक जीव तो अनादि के हैं। धर्म को प्राप्त, धर्म को प्राप्त करके सर्वज्ञ पद प्राप्त और संसार की पूर्ण निगोददशा को प्राप्त जीव अनादि के हैं।

परन्तु जब साधक को भान आँख खुली, अरे! हम राग नहीं, हों! हम पुण्य नहीं, यह देह की क्रिया हम नहीं। हम तो चैतन्यस्वभाव हैं। तब कहते हैं कि आदि हुई। यह तब से हमारी शोभा है। यह मेरुपर्वत तो सामान्य गिना जाता था परन्तु प्रभु! आपकी प्रदक्षिणा जब जन्माभिषेक में हुई, तब उस जन्म स्थान में जल के सम्बन्ध से मेरुपर्वत तीर्थ अर्थात् पवित्र स्थान बन गया है और यह बात संसार में प्रत्यक्ष गोचर है कि जो वस्तु पवित्र हो, उसकी लोग भक्ति तथा प्रदक्षिणा इत्यादि करते हैं। पश्चात् निक्षेप से भगवान की मूर्ति स्थापित करते हैं। भावनिक्षेप स्वयं का भाव है या नहीं? समझ में आया?

वास्तव में भगवान की मूर्ति की पूजा का विकल्प, विषय यह निश्चय से सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ है, तब नये विषय करनेवाला है, तब यह स्थापनानिक्षेप उसका विषय होता है। समझ में आया? जब आत्मा चैतन्य ज्ञानस्वरूप है, ऐसा भावश्रुतज्ञान हुआ, तब उसमें दो पहलू पड़ गये—निश्चय और व्यवहारनय के। तब उस नय का विषय होता है तो निश्चयनय का विषय चौथे में। विकल्प उठा, तब विषय पर हुआ। तब निक्षेप... यह भगवान है। ऐसा व्यवहार से निक्षेप है। वह वास्तविक निक्षेप का लक्ष्य और विषय करनेवाले ज्ञानी का ही विकल्प होता है अथवा ज्ञानी का ही ज्ञान होता है। अज्ञानी को वह व्यवहार निक्षेप लागू नहीं पड़ता। कहो, चन्दुभाई! ओहोहो!

यहाँ यह कहते हैं कि **तब से यह बात संसार में भी कहते हैं कि जो वस्तु पवित्र हुआ करती है, उसकी लोग प्रदक्षिणा देते हैं; रात-दिन उस मेरु की प्रदक्षिणा (परिक्रमा) करते रहते हैं...** कौन? इस मेरु को पवित्र समझकर रात-दिन करते हैं। **ऐसा मालूम होता है।**

ग्यारह।

गाथा ११

मेरुसिरे पडणुच्छलिय णीरताडणपणट्ठदेवाणं।
तं वित्तं तुह ण्हाणं तह जह णहमासियं किण्णं।।११।।

अर्थ – हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! मेरुपर्वत के मस्तक पर आपका स्नान होने पर पतन 'गिरने' से उछलते हुए जल के ताड़न से अत्यन्त नष्ट उन देवों की ऐसी दशा हुई, मानों चारों ओर से आकाश ही व्याप्त हो गया हो।

गाथा - ११ पर प्रवचन

मेरुसिरे पडणुच्छलिय णीरताडणपणट्ठदेवाणं।
तं वित्तं तुह ण्हाणं तह जह णहमासियं किण्णं।।११।।

मुनि छठवें गुणस्थान में भावलिंगी सन्त अमृत की डकार क्षण में और पल में आती है। अप्रमत्तदशा क्षण में आती है, दूसरे क्षण में विकल्प उठता है जरा भक्ति का। यह भक्ति लिखते-लिखते सप्तम गुणस्थान अनेक बार आता है। समझ में आया? यह चारित्रदशा, यह मुनिदशा, यह गुरुदशा, यह केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले कैसे होते हैं, कहते हैं कि उन्हें अप्रमत्त तो ऐसे क्षण में आता है। फिर क्षण में प्रमत्त पंच महाव्रत अहिंसा आदि का भक्ति का विकल्प उठता है, उन्हें भी ऐसी भक्ति उठती है। भक्ति का भाव (आवे), ऐसी वस्तु की सहज मर्यादा है। वैसा भाव मुनि को भी आये बिना नहीं रहता। यहाँ तो पहले से कहे, नहीं। यह नहीं। मूर्ति नहीं, पूजा नहीं, अमुक नहीं, अमुक नहीं। तुझे नहीं प्रगट हुआ सम्यग्ज्ञान, नहीं प्रगट हुआ नयभाग, और नहीं निक्षेप विषय किसका कौन करे, इसकी तुझे खबर नहीं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं **हे प्रभो! मेरुपर्वत के मस्तक पर आपका स्नान होने पर...** अब वहाँ आलोचना करे। लो, इन्द्रों ने ऐसा पानी बहाया, अमुक किया, अमुक किया। सुन न, भाई! उसका भाव क्या है? समझ में आया? उनका भाव ऐसे... आहाहा! ....पुतला नहीं करते? पश्चात् उसे स्नान नहीं कराते? परन्तु यह धनतेरस को कुछ करते तो होंगे

या नहीं? क्या कुछ करते हैं। रुपये धोवे और ऐसा कुछ करते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : धन को साफ करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुँवरजीभाई! यह धनतेरस आती है न? तो क्या करते होंगे या नहीं कुछ? यह बहियाँ तो पूजते हैं न, लो न! शारदा... शारदा...। अमावस्या के दिन ऐसे। आहाहा! पैसा प्रिय और कमाना और मानो ढ़ेर हो।

मुमुक्षु : लिखते हैं न शालिभद्र की ऋद्धि होओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : शालिभद्र की ऋद्धि होओ और बाहुबली का बल होओ। किसके साथ लड़ना है तुझे? क्या है? और शालिभद्र की ऋद्धि होओ। यह ९९, यह ९९ पेटी डालेगा कहाँ? बड़ी पेटी ९९। ऐसे तो मूढ़ जीव, जिनके पुण्य का ठिकाना नहीं होता। पुण्य की श्रद्धा नहीं होती और मानो यह बहियाँ सदा पूजूँ, इसलिए यह मुझे मिले। यह शारदा नहीं।

स्वरूप केवलज्ञान की लक्ष्मी को प्राप्त ऐसे परमात्मा... आता है न? अनेकान्तमयी मूर्ति-नहीं आता? दूसरे श्लोक में समयसार में आता है। अनेकान्तमय मूर्ति। सरस्वती तो वह है। सम्यक्श्रुतज्ञान। भगवान केवलज्ञान, सम्यक् (श्रुतज्ञान) और भगवान की मूर्ति व्यवहार से पूजनीय गिनने में आते हैं। ऐसा अनादि का स्वरूप सनातन चला आता है। वह कहीं नयी बात नहीं है। नरभेरामभाई! कहाँ गये जगजीवनभाई! कहो, समझ में आया इसमें?

हे भगवान! **आपका स्नान होने पर पतन (गिरने) से उछलते हुए जल...** भगवान को ऐसे स्नान करावे न? तो पानी का प्रपात गिरे न? तो ऐसे उछलता है। पानी उछलता है। पानी उछले, प्रपात उछले। ओहोहो! **इसके कारण से पतन (गिरने) से उछलते हुए जल के ताड़न से... ऐसी दशा हुई,...** देव तो लाखों-करोड़ों देव आते हैं। देवों को वह पानी लगे तो देव पसर जाते हैं। पृथक्-पृथक् आकाश में पूरे व्याप्त हो जाते हैं। कहते हैं कि इन देवों की ऐसी दशा हो गयी। **मानों चारों ओर से आकाश ही व्याप्त हो गया हो अथवा उस धोधमार पानी की मार से बचने के लिये मानों कि देवों ने आकाश का आश्रय लिया हो, ऐसे आकाश देवो द्वारा आच्छादित हो गया है।** लो, यह... डाला। आहाहा!

पद्मनन्दि में आया है। पहले में। यह अधिकार ऋषभदेव का। पहले में आया है न? भगवान! जब आपका जन्माभिषेक हुआ, इन्द्र ऐसे हाथ फैला करके आपकी भक्ति करते थे, वहाँ के बादलों का ठोस भाग था, वह बादल टूट गये। वे यह बादल टुकड़े पड़े हुए दिखते हैं। समझ में आया? क्षणभंगुर बादल। वे क्षणभंगुर अर्थात् टुकड़े हो गये। आहाहा! क्या कहते हैं यह? इन्द्र प्रभु की भक्ति करते हुए हाथ लम्बे हुए और वे बादल टूट गये और उसमें का यह थोड़ा टुकड़ा दिखता है।

इसी प्रकार धर्मात्मा भक्ति करते हुए जब ऐसा उछाला आता है कि चैतन्य प्रभु ज्ञायक और आनन्द का कन्द है, ऐसा जब दृष्टि का विकास हुआ, उस बादल की जो आड़ थी न अनादि की? टुकड़े हो गये। थोड़ा-थोड़ा भाग जरा टुकड़ा रह गया जरा। वह ज्ञान जानता है कि यह टुकड़ा है। यह अभी टूटकर समाप्त हो जाएगा। समझ में आया? ओहो! भारी भक्ति भाई!

आकाश ही व्याप्त हो गया हो। ऐसा। पानी उछला न! इसी प्रकार चैतन्यस्वभाव की धारा उछली। ऐसे बाहर में जन्माभिषेक का पानी उछला, इसलिए देवों को ऐसा ताड़न हुआ न... अन्तर में चैतन्य की ज्ञानधारा, सम्यक्धारा श्रद्धा-ज्ञान द्वारा उछले, (उसमें) कोई कारण-फारण राग और निमित्त का है नहीं। ऐसी धारा उछलने पर ऐसा सब छा गया। ज्ञान छा गया। सबको जानना-देखना रह गया। जानना-देखना छा गया। कोई भी चीज़ हो, उसे ज्ञान जानता-देखता है। ऐसी प्रभु आपकी भक्ति और हमारी भक्ति आत्मा की, दोनों होने पर, ऐसे देव वहाँ छा जाते हैं, यहाँ आत्मा सबको जान लेता है। उसे जानने का कुछ बाकी नहीं रहता। कहो, नरभेरामभाई! समझ में आया यह? यह दान का अधिकार नहीं, यह भक्ति का है। कहो, समझ में आया?

-पानी की मार से बचने के लिये मानों कि देवों ने आकाश का अत्यन्त आश्रय लिया हो। भगवान की भक्ति के शुभभाव में भी पाप का दल छूट जाता है। भगवान की भक्ति के शुभभाव में भी पाप के दल की स्थिति, रस घट जाता है और स्वभाव की चैतन्य भगवान देव की स्तुति-भक्ति की एकाग्रता में पुण्य-पाप की दोनों स्थिति, पाप की घटे, पुण्य की घटे रस, (अनुभाग) पाप का घटे, पुण्य का बढ़े। समझ में आया? यह घटाना-बटाना यह तो व्यवहार की बात है, हों! उसकी योग्यता है

इसलिए वहाँ घटने की योग्यता हो। सबने यह विवाद लिया है न? संक्रमण हो, अपकर्षण हो, उसमें क्रमबद्ध कहाँ रहा? शास्त्र में तो ऐसा कहा है कि ऐसे भाव हों, तब कर्म ऐसे पलट जाता है; ऐसे भाव हों, तब स्थिति घट जाती है; ऐसे भाव हों, तब स्थिति बढ़ जाती है। अरे! भगवान! सुन तो सही! यह सब निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के कथन हैं। उस समय स्थिति घटने के योग्य ही परमाणु के क्रम में होता है। बापू! पदार्थ की व्यवस्था और पदार्थ की जो मर्यादा है, वह ख्याल में न आवे तो एक भी पदार्थ तुझे श्रद्धा में सच्चा नहीं आता। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि जो देवों की इतनी अधिक वहाँ भीड़ की कि पानी के प्रपात पड़ने पर जो पानी उछला, (उससे) आकाश व्याप्त हो गया। इतने तो देव आपकी भक्ति में आये थे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ साधारण मनुष्य को तो... यह समय मिलता नहीं, भाई! समय नहीं मिलता। दुकान और ऐसे जाना हो कहीं अन्यत्र, तब सब समय मिलता है। उगाही करने जाना हो तो (समय) मिलता है, गाँव में वकालत करने जाना हो तो मिलता है, भगवान गाँव में विराजमान हों (तो) दर्शन करने का समय नहीं मिलता! क्योंकि वह तो पुण्य है और भगवान तो जड़ है, वहाँ कहाँ... कहो, समझ में आया? चन्दुभाई!

अरे! भाई! तुझे चैतन्य की महिमा आयी हो तो भगवान में भी तू 'प्रभु है', ऐसा व्यवहार से यह तुझे भासित हुए बिना नहीं रहेगा। 'जिनप्रतिमा जिनसारखी...' 'जिनप्रतिमा जिनसारखी...' भगवान के समीप में मानो जाता हूँ, ऐसा प्रहलाद और भक्ति आये बिना नहीं रहेंगे। यहाँ तो आचार्य महाराज स्वयं की भक्ति स्व की ओर भगवान की भक्ति दोनों साथ में वर्णन कर रहे हैं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)